२. हमारी आदर्श प्रतियाँ

१. धवलादि सिध्दान्तग्रंथोंकी एकमात्र प्राचीन प्रति दक्षिण कर्नाटक देशके मूडविद्री नगरके गुरुवसदि नामक जैन मंदिरमें वहांकेभट्टारक श्रीचारुकीर्तिजी महाराज तथा जैन पंचोंकेअधिकारमें है। तीनों ग्रंथोंकी प्रतियां ताडपत्र पर कानडी लिपिमें हैं। धवलाके ताडपत्रोंकी लम्बाई लगभग २। फुट, चौडाई ३ इंच, और कुलसंख्या ५९२ है। यह प्रति कबकी लिखी हुई है इसका ठीक ज्ञान प्राप्त प्रतियों परसे नहीं होता है। किन्तु लिपि प्राचीन कानडी है जो पांच छेसौ वर्षोसे कम प्राचीन नहीं अनुमान की जाती। कहा जाता है कि ये सिध्दान्त ग्रंथ पहले जैनविद्री अर्थात् श्रवणबेलगोल नगर केएक मंदिरजी में विराजमान थे। इसी कारण उस मंदिरकी अभी तक 'सिध्दान्त बस्ती' नामसे प्रसिध्दि है। वहां से किसी समय ये ग्रंथ मूडविद्री पहुँचे। (एपीग्राफिआ कर्नाटिका, जिल्द २, भूमिका पृ. २८)

२. इसी प्रतिकी धवलाकी कानडी प्रतिलिपि पं. देवराज सेठी, शान्तप्पा उपाध्याय और ब्रह्मय्य इन्द्र द्वारा सन् १८९६ और १९१६ केबीच पूर्ण की गयी थी। यह लगभग १ फुट २ इंच लम्बे और ६ इंच चौडे काश्मीरी कागज के२८०० पत्रों पर है। यह भी मूडविद्री के गुरुवसदि मंदिर में सुरक्षित है।

३. धवलाके ताडपत्रोंकी नागरी प्रतिलिपी पं. गजपति उपाध्याय द्‌वारा सन् १८९६ और १९१६ केबीच की गई थी। यह प्रति १ फुट ३ इंच लम्बे, १० इंच चौडे काश्मीरी कागज के१३२३ पत्रों पर है। यह भी मूडविद्री केगुरुवसदि मंदिरमें सुरक्षित है।

४. मूडविद्रीके ताडपत्रों परसे सन् १८९६ और १९१६ केबीच पं. गजपति उपाध्यायने उनकी विदुषी पन्ती लक्ष्मीबाई की सहायतासे जो प्रति गुप्त रीतिसे की थी वह आधुनिक कानडी लिपिमें कागजपर है। यह प्रति अब सहारनपुरमें लाला प्रद्युम्नकुमारजी रईसकेअधिकारमें है।

५. पूर्वोक्त नं. ४ की प्रति की नागरी प्रतिलिपी सहारनपुर में पं. विजयचंद्रैया और पं. सीतारामशास्त्रीकेद्वारा सन् १९१६ और १९२४ केबीच कराई गई थी। यह प्रति १ फुट लम्बे, ८ इंच चौडे कागजके१६५० पत्रोंपर हुई है। इसका नं. ४ की कानडी प्रतिसे मिलान मूडविद्री के पं. लोकनाथजी शास्त्रीद्वारा सन् १९२४ में किया गया था। यह प्रति भी उक्त लालाजीकेही अधिकारमें है।

६. पूर्वोक्त नं. ५ की नागरी प्रतिलिपि करते समय पं. सीताराम शास्त्रीने एक और नागरी प्रतिलिपि करकेअपने पास रख ली थी, ऐसा श्रीमान् लाला प्रद्युम्नकुमारजी रईस, सहारनपुर, की सूचनासे जाना जाता है। यह प्रति अब भी पं. सीताराम शास्त्रीकेअधिकारमें है।

७. पूर्वोक्त नं. ६ की प्रतिपरसे ही सीताराम शास्त्रीने वे अनेक प्रतियां की हैं जो अब कारंजा, आरा, सागर आदि स्थानों में विराजमान हैं। सागर की प्रति १३।। इंच लम्बे ७।।। इंच चौडे कागज के१५९६ पत्रोंपर है। यह प्रति सत्तर्कसुधातरंगिणी पाठशाला, सागर, केचैत्यालयमें विराजमान है और श्रीमान पं. गणेशप्रसादजी वर्णीकेअधिकारमें है।

८. नं. ७ परसे अमरावतीकी धवला प्रति १७ इंच लम्बे, ७ इंच चौडे कागजके१४६५ पत्रोंपर बटुकप्रसादजी कायस्थकेहाथसे सवंत् १९८५ केमाघकृष्णा ८ शनि. को लिखी गई है। यह प्रति अब इस साहित्य उध्दारक फंडके ट्रस्टी श्रीमान् सिं. पन्नालाल बंशीलालजी केअधिकारमें है और अमरावतीकेपरवार दि. जैन मन्दिरमें विराजमान है। इसके३७५ पत्रोंका संशोधन सहारनपुरवाली नं. ५ की प्रतिपरसे सन १९३८ में कर लिया गया था।

प्रस्तुत ग्रंथ की प्रथम प्रेसकापी इसी प्रतिपरसे की गई थी। इसका उल्लेख प्रस्तुत ग्रंथकी टिप्पणियों में 'अ' संकेत द्वारा किया गया है।

९. दूसरी प्रति जिसका हमने पाठ संशोधनमें उपयोग किया है, आराकेजैनसिध्दान्त भवन में विराजमान है, और लाला निर्मलकुमारजी चक्रेश्वरकुमारजीकेअधिकारमें है। यह उपर्युक्त प्रति

नं. ६ पर से स्वयं सीताराम शास्त्री द्वारा वि. सं. १९८३ माघ शुक्ला ५ रविवार को लिखकर समाप्त की हुई है। इसके कागज १४।। इंच लम्बे और ६।। इंच चौडे हैं, तथा पत्रसंख्या ११२७ है यह हमारी टिप्पणियों आदि की 'आ ' प्रति है।

१०. हमारेद्वारा उपयोगमें ली गई तीसरी प्रति कारंजाके श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रमकी है और हमें पं. देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्रीके द्वाारा प्राप्त हुई। यह भी उपर्युक्त नं. ६ परसे स्वयं सीताराम शास्त्री द्वारा १३।। इंच लंबे ८ इंच चौडे कागजके १४१२ पत्रोंपर श्रावण शुक्ला १५, सं. १९८८ में लिखी गई है। इस प्रतिका उल्लेख टिप्पणियों आदि में 'क ' संकेत द्वारा किया गया है।

सहारनपुर की प्रतिसे लिए गए संशोधनोंका संकेत 'स' प्रतिके नामसे किया गया है ।

इनके अतिरिक्त, जहांतक हमें ज्ञात है, सिध्दान्त ग्रन्थोंकी प्रतियां सोलापुर, झालरापाटन, व्यावर, बम्बई , इन्दौर, अजमेर, दिल्ली और सिवनीमें भी हैं । इनमेंसे केवल बम्बई दि. जैन सरस्वती भवन की प्रति का परिचय हमारी प्रश्नावलीके उत्तरमें वहां के मैनेजर श्रीयुत पं. रामप्रसादजी शास्त्रीने भेजनेकी कृपा की, जिससे ज्ञात हुआ कि वह प्रति आराकी उपर्युक्त नं. ९ की प्रति पर से पं. रोशनलालद्वारा सं. १९८९ में लिखी गई है, और उसी परसे झालरापाटन ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वतीभवन के लिए प्रति कराई गई है । सागरकी सत्तर्कसुधातरंगिणी पाठशालाकी प्रतिका जो परिचय वहां के प्रधानाध्यापक पं. दयाचंदजी शास्त्रीने भेजने की कृपा की है , उससे ज्ञात हुआ है कि सिवनी की प्रति सागरकी प्रतिपरसे ही की गई है । शेष प्रतियोंका हमें हमारी प्रश्नावलीके उत्तरमें कोई परिचय भी नहीं मिल सका ।

इससे स्पष्ट है कि स्वयं सीताराम शास्त्रीके हाथकी लिखी हुई जो तीन प्रतियां कारंजा, आरा और सागरकी हैं, उनमेंसे पूर्व दोका तो हमने सीधा उपयोग किया है और सागरकी प्रतिका उसकी अमरावतीवाली प्रतिलिपि परसे लाभ लिया है ।

धवल सिध्दान्तकी प्रतियोंकी पूर्वोक्त परम्पराका निदर्शक

वंशवृक्ष

१ ताडपत्र प्रति (मूडविद्री)

२ कनाडी (मूडविद्री) ४ कनाडी (सहारनपुर) ३ नागरी (मूडविद्री)

विक्रम संवत् १९७३ १९७३ १९७३

५ नागरी (सहारनपुर)

१९८१

६ प्रति (पं. सीताराम)

१९८१

९ प्रति (आरा) ७ प्रति (सागर) १० प्रति (कारंजा)

१९८३ १९८३ १९८८

८ प्रति अमरावती

१९८५

प्रस्तुत संस्करण

(प्रथम आवृत्ति) (द्वितीय आवृति) वि. सं. २०१२ इ. सन १९५६ वि. सं. २०२८ इ. सन १९७२

इस विवरण और वंशवृक्ष से स्पष्ट है कि यथार्थमें प्राचीन प्रति एक ही है किंतु खेद है कि अत्यन्त प्रयत्न करनेपर भी हमें मूडविद्रीकी प्रतिके मिलानका लाभ नहीं मिल सका। यही नहीं, जिस प्रति परसे हमारी प्रथम प्रेस-कापी तैयार हुई वह उस प्रतिकी छठवीं पीढीकी है। उसके संशोधनके लिऐ हम पूर्णंत: दो पांचवी पिढीकी प्रतियोंका लाभ पा सके। तीसरी पीढीकी सहारनपुरवाली प्रति अन्तिम संशोधनके समय हमारे सामने नहीं थी। उसके जो पाठ-भेद अमरावतीकी प्रतिपर अंकित कर लिये गये थे उन्हींसे लाभ उठाया गया है। इस परंपरामें भी दो पीढीयोंकी प्रतियां गुप्त रीतिसे की गई थीं। ऐसी अवस्थामें पाठ-संशोधनका कार्य कितना कठिन हुआ है यह वे पाठक विशेषरुपसे समझ सकेंगे जिन्हें प्राचीन ग्रंथोंके संशोधनका कार्य पडा है। भाषाके प्राकृत होने और विषयकी अत्यन्त गहनता और दुरुहताने संशोधन कार्य और भी जटिल बना दिया था।

यह सब होते हुए भी हम प्रस्तुत ग्रंथ पाठकोंके हाथमें कुछ दृढता और विश्वासके साथ दे रहे हैं। उपर्युक्त अवस्थामें जो कुछ सामग्री हमें उपलब्ध हो सकी उसका पूरा लाभ लेनेमें कसर नहीं रखी गई। सभी प्रतियोंमें कहीं कहीं लिपिकारके प्रमादसे एक शब्दसे लेकर कोई सौ शब्दतक छुट गये हैं। इनकी पूर्ति एक दूसरी प्रतिसे कर ली गई है। प्रतियोंमें वाक्य-समाप्ति-सूचक विराम-चिन्ह नहीं है। कारंजाकी प्रतिमें लाल स्याहीके दण्डक लगे हुए हैं, जो वाक्यसमाप्तिके समझनेमें सहायक होनेकी अपेक्षा भ्रामक ही अधिक हैं। ये दण्डक किस प्रकार लगाये गये थे इसका इतिहास श्रीमान् पं. देवकीनन्दनजी शास्त्री सुनाते थे । जब पं. सीतारामजी शास्त्री ग्रंथोंको लेकर कारंजा पहुंचे तब पंडितजीने ग्रंथोंको देखकर कहा कि उनमें विराम-चिन्होंकी कमी है। पं. सीतारामजी

शास्त्रीने इस कमीकी वहीं पूर्ति कर देनेका वचन दिया और लाल स्याही लेकर कलमसे खटाखट दण्डक लगाना प्रारंभ कर दिया। जब पण्डितजीने उन दण्डकोंको जाकर देखा और उन्हे अनुचित स्थानोंपर भी लगा पाया तब उन्होंने कहा यह क्या किया? पं. सीतारामजीने कहां जहां प्रतिमें स्थान मिला, आखिर वहीं तो दण्डक लगाये जा सकते हैं ? पण्डितजी इस अनर्थको देखकर अपनी कृतिपर पछताये । अतएव वाक्यका निर्णय करनेंमे ऐसे विराम-चिन्होंका ख्याल बिलकुल ही छोडकर विषयके तारतम्यद्वारा ही हमें वाक्यसमाप्तिका निर्णय करना पडा है। इस प्रकार तथा अन्यत्र दिये हुए संशोधनके नियमोंद्वारा अब जो पाठ प्रस्तुत किया जा रहा है वह समुचित साधनोंकी अप्राप्तिको देखते हुए असंतोषजनक नहीं कहा जा सकता । हमें तो बहुत थोडे स्थानोंपर शुध्द पाठमें संदेह रहा है। हमें आश्चर्य इस बातका नहीं है कि ये थोडे स्थल शंकास्पद रह गये, किंतु आश्चर्य इस बातका है कि प्रतियोंकी पूर्वोक्त अवस्था होते हुए भी उन परसे इतना शुध्द पाठ प्रस्तुत किया जा सका। इस संबन्धमें हमसे पुन: यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि गजपतिजी उपाध्याय और पं. सितारामजी शास्त्रीने भले ही किसी प्रयोाजनवश नकलें की हों किंतु उन्होंने कार्य किया उनकी शक्तिभर ईमानदारीसे और इसके लिये उनके प्रति, और विशेषत: पं. गजपतिजी उपाध्यायकी धर्मपत्नी लक्ष्मीबाईकेप्रति हमारी कृतज्ञता कम नहीं है।